पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत में चिकित्सा–विज्ञान का विकास

डा0 धंनजय पाठक*

गुप्त साम्राज्य जैसी केन्द्रियकृत शक्ति के पतन के बाद समस्त भारत में क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टिकोण से देश में कई विसंगतियाँ व्याप्त थी। इन संक्रमणकालीन विसंगतियों के बावजूद साहित्य–सृजन और विज्ञान, प्रौद्यौगिकी की दृष्टि से यह काल भारत का स्वर्णिम काल रहा है। प्रायः प्रत्येक राजवंश ने अपने आश्रय में कई साहित्यिक कृतियों के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। जिसके अतंर्गत संस्कृत, पाली, प्राकृत एंव अपभ्रंश साहित्य जैसे नूतन कृतियों का विकास हुआ।

इस बदलते राजनीतिक परिदृश्य में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रगति परिलक्षित होती है। इस काल में चिकित्सा विज्ञान का मूल आधार आयुर्वेद था। इस काल में साहित्यिक रचनाओं के प्रणयन के साथ–साथ ऐसी कई ग्रन्थों की रचनाऐं हुई जो चिकित्सा विज्ञान के विकास की ओर संकेत देती है । कई टीकाकारों ने आयुर्वेदीय संहिताओं एंव अन्य संग्रह ग्रंथों पर व्याख्याएं लिखी जिनमें मुख्य रूप से छठी शताब्दी के अन्तिम चरण में लिखा गया वृद्ध बाग्भट्ट का ''अष्टांग संग्रह'', सातवीं शताब्दी का ''अष्टांग ह्रदय'' और माधव का ''रोग विनिश्चय'' सम्मिलित है।

पूर्वमध्यकाल में चिकित्सा विज्ञान का क्रमबद्ध एंव व्यवस्थित रूप से इतिहास नहीं लिखा गया, जिसके चलते आम जनता को यह ज्ञात नहीं हो पाया कि यह विज्ञान कितना प्राचीन एंव वैज्ञानिक धरातल पर आधारित है। चिकित्सा विज्ञान का कोई व्यवस्थित इतिहास नहीं होने के कारण इसे ही परम्परागत चिकित्सा पद्धति तक कहा गया। पूर्वमध्यकाल में चिकित्सा विज्ञान का प्रसार भारत से बाहर भी कई देशों में होता है। खासकर यूनान, मिस्त्र, बेबीलोन आदि पश्चिमी देशों में।[1]

पूर्वमध्यकाल में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढ़ाचें को लेकर कई ग्रन्थ लिखे गये। चिकित्सा विज्ञान के विकास के दृष्टिकोण से पूर्वमध्यकाल अत्यन्त निर्णायक काल रहा। सातवीं सदी के ग्रथंकार बाग्भट्ट ने ''अष्टांगह्रदय'' की रचना की, जिसे ''आयुर्वेद का ह्रदय'' कहा जाता है। यह संहिता चिकित्सा विज्ञान के व्यावहारिक रूप को प्रकट करती है। इसमें आयुर्वेद के दोनों ही प्रमुख संप्रदायों काय और शल्य चिकित्सा का वर्णन मिलता है। इसकी गणना वृहदत्रयी (चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांगह्रदय) में की जाती है। इस ग्रंथ का अरबी भाषा में अनुवाद बगदाद के खलीफा हारून अल रशीद

प्रवक्ता (इतिहास) श्री गांधी महाविद्यालय रायबरेली

ने करवाया था और बाद में इसका तिब्बती, जर्मन भाषा में अनुवाद भी हुआ।[2]

इसी प्रकार सातवीं सदी के अन्तिम दशक में प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य माधवकर ने माधवनिदान (रोगविनिश्चय) नामक ग्रंथ की रचना की। माधवकर ने अनेक चिकित्सा विज्ञान के विषयों पर प्रकाश डाला। इन्होनें व्याधि, वात, रक्त एंव उरूस्तम्भ का वर्णन किया है। शूलरोग के साथ परिणाम शूल और अन्नद्रवशूल का वर्णन, अम्लपित्त का स्वतंत्र वर्णन, मेदोरोग, उदर दर्द विस्फोट, मसूरिका आदि का वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। इसके अलावा स्त्री रोगों में असृग्दर, योनिश्पात्, योनिकन्द, सूतिका रोग, स्तन रोग का भी वर्णन मिलता है। इसमें आयुर्वेद के आठों अंगों से समबन्धित निदान की सम्पूर्ण व्यवस्था दी गयी है।

12वीं शताब्दी में भी चिकित्सा विज्ञान से समबन्धित ग्रंथों का प्रणयन किया गया, जिनमें ''शांरगधर संहिता'' की रचना प्रख्यात वैद्याचार्य दामोदर पुत्र शारंगधर ने की। उन्होनें शोडल की शैली पर इस संहिता की रचना की। बत्तीस अध्यायों और 2600 श्लोकों से आबद्ध यह संहिता 3 खण्डों में विभक्त है। इस संहिता में रसशास्त्रीय औषधियों, औषधकल्पनाएँ और नाड़ी परीक्षा आदि अष्टविध रोगविज्ञान के उपाय और नानाविधि चिकित्सा कर्मों का व्यावहारिक रूप से प्रतिपादन किया गया है। नाड़ी परीक्षा का सर्वप्रथम उल्लेख इसी संहिता में किया गया है। इस ग्रंथ में चिकित्सा विज्ञान के विविध प्रकारों का पंचकर्म, शिरोवस्ति, रक्तमोक्षण, वाजीकरण के विभिन्न प्रकारों आदि का वर्णन किया गया है। इसकी उपादेयता के कारण ही इसे हिन्दी, गुजराती, और बांग्ला आदि भाषाओं में अनुवादित किया गया है।

चिकित्सा विज्ञान के ही क्षेत्र में जैन आयुर्वेदाचार्य उग्रादित्य द्वारा ''कल्याणकारक'' ग्रंथ की रचना की गयी। विशेषतः इस ग्रंथ में समन्तभद्रकृत अष्टांग का अनुसरण किया गया है। चिकित्सा विज्ञान के आठों अंगों का विवरण भी इस ग्रंथ में मिलता है। शरीर स्वास्थवृत आदि का वर्णन भी इसमें मिलता है। लेकिन, रोगों का क्रम माधवनिदान (रोग विनिश्चय) से भिन्न दिया गया है। चूंकि माधवनिदान के क्रमानुसरण की परिपाटी वृंद (9वीं शताब्दी) ने चलायी थी। अतः कल्याणकारक उसके पूर्व की रचना प्रतीत होती है। जैन धर्म की विशेषताएं भी इसमें आ गयी है, जैसे–शहद का प्रयोग जैन धर्म में निशिद्ध है अतः उसके स्थान पर शर्करा या गुड़ का प्रयोग बतलाया गया है। चरक संहिता की ''माधुतैलीक बस्ति'' को ''गौडतैलिक बस्ति'' कहा गया है। कल्याणकारक में चरक, सुश्रुत आदिसंहिताओं का पूरा उपयोग किया गया है। विशेषतः सुश्रुत का अनुसरण अधिक किया गया है। कल्याणकारक के संहिताकार उग्रादित्य का काल 9वीं शताब्दी माना जाता है, चूंकि वह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम (815–877ई0) की सभा से सम्बद्ध था। आदिपुराण के रचनाकार जिनसेन अमोघवर्ष के गुरू थे। उग्रादित्य के गुरू श्री नंदी चालुक्यशासक विष्णुवर्धन के राजवैद्य थे। इस प्रकार इस ग्रंथ का सम्बन्ध दक्षिण भारतीय शासकों से है।[3]

चिकित्सा विज्ञान से समबन्धित एक अन्य ग्रंथ जिसका प्रणयन इस काल में ही हुआ, वह था, नागार्जुन द्वारा ''योगशतक'' की रचना। इत्सिंग नामक चीनी यात्री द्वारा जिस अष्टांग संहिता का उल्लेख किया गया है उसे कुछ विद्वान योगशतक ही मानते हैं। यदि इसे स्वीकार किया जाय तो योगशतक उस नागार्जुन की रचना मानी जायेगी जो सातवीं सदी

में हुए एंव जिनके बारे में उल्लेख प्रख्यात अरबी विद्वान अलबरूनी ने अपने यात्रा विवरण में किया है।[4] वृंदमाधव में इसी नागार्जुन द्वारा पाटलिपुत्र स्थित स्तम्भ में उत्कीर्ण योग उद्धृत किये गये हैं। इस ग्रंथ में चिकित्सा विज्ञान के आठों भागों के अतिरिक्त एक उत्तर तंत्र भी है। योगशतक तथा नागार्जुन के जीपसूत्र और भेषजसूत्र तिब्बती ग्रंथ तग्यूर (तारानाथ) में संग्रहित है। यहॉ यह ध्यान देना आवश्यक है कि इतिहास में कई नागार्जुन हुए। एक नागार्जुन कनिष्क के काल में हुए, जिन्होनें पारद पर अनेकों शोध किये तथा उन्होनें ही पहली बार बताया कि पारद को खाया भी जा सकता है।[5]

9वीं शताब्दी में ही प्रख्यात टीकाकार ''जेज्जट'' ने वृहदत्रयी पर टीका लिखी। सुश्रुत संहिता पर जेज्जट ने जो टीका लिखी, उसी के आधार पर चन्द्रट ने सुश्रुत संहिता को पुनःमार्जित किया। चरक संहिता में उन्होनें ''निरन्तरपादव्याख्या'' लिखी, जो हरिदत्त शास्त्री द्वारा सम्पादित लाहौर से 1940 में प्रकाशित हुयी। जेज्जट ने अष्टांग ह्रदय पर भी टीका लिखी। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एंव अंष्टाग ह्रदय इन तीनों को मिलाकर वृहदत्रयी कहा गया। जेज्जट की टीकाएं अत्यन्त लोकप्रिय थी। इसी कारण परवर्ती टीकाकारों ने अपनी रचनाओं में इसका पर्याप्त उपयोग किया। गयदास, चक्रपाणि, विजयरक्षित, हेमाद्रि, शिवदास सेन आदि टीकाकारों ने जेज्जट को उदघृत किया है। चन्द्रट जो 12वीं शताब्दी के टीकाकार थे, उन्होनें भट्टारहरिश्चंद्र के साथ–साथ जेज्जट और सुधीर की व्याख्याओं का उल्लेख किया है। वृंद (9वीं शताब्दी) ने 'सिद्धयोग' में जेज्जट का उल्लेख किया है। अतः यह प्रमाणित होता है कि जेज्जट का काल भी 9वीं शताब्दी का ही है।

10वीं सदी में चन्द्रनंदन ने अष्टांगह्रदय' पर पदार्थचद्रिंका' नामक टीका लिखी। जिसका उल्लेख डल्हण ने किया है। चन्द्रनंदन ने 'गणनिघण्टु' ग्रंथ की भी रचना की थी। जो कश्मीर के निवासी थे। पदार्थचद्रिंका की व्याख्या का अनुवाद तिब्बती भाषा में 1055–1183 ई0 के बीच हुआ। चन्द्रनंदन ने रविगुप्त द्वारा लिखित सिद्धसार को उदृघत किया है, जिससे प्रमाणित होता है कि इनका काल दसवीं शताब्दी था।

इसी समय तिसटाचार्य के पुत्र चन्द्रट ने अपने पिता की रचना 'चिकित्साकालिका' पर टीका लिखी तथा 'योगरत्नसमुच्चय' नामक चिकित्सा ग्रंथ लिखा। इनका काल भी दसवीं शताब्दी माना जाता है। 10वीं शताब्दी में ही टीकाकार भासदेव ने चरक संहिता पर टीका लिखी। इसके अलावा ब्रह्मदेव ने चरक संहिता एंव सुश्रुत संहिता पर व्याख्या लिखी तथा इसी काल में ईश्वरसेन ने भी चरक संहिता पर टीका का प्रणयन किया।[6]

11वीं शताब्दी के प्रसिद्ध टीकाकार गयदास थे, जो पाल शासक महीपाल प्रथम के राजवैद्य थे। उन्होनें सुश्रुत संहिता पर न्यायचद्रिंका नामक टीका लिखी। जो चिकित्सा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गयदास ने जेज्जट को उद्घृत किया है तथा स्वंय चक्रपाणि के द्वारा वे उद्घृत है। अतः गयदास का काल चक्रपाणि के बाद आता है। इन्होनें चरक संहिता पर 'चरक चन्द्रिका' नामक व्याख्या लिखी। सुश्रुत और चरक दोनों पर टीका लिखने के कारण यह चन्द्रिकाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।[7] 11वीं शताब्दी में ही प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त हुए जिन्होनें चरक संहिता पर 'आयुर्वेददीपिका' नामक टीका

लिखीं, जो वर्तमान में भी उपलब्ध है। चक्रपाणिदत्त बंगाल राज्य के थे तथा इनके पिता पाल शासक नयपाल के राजवैद्य थे। नयपाल का काल ऐतिहासिक रूप से 1038–1055 ई0 है अतः चक्रपाणिदत्त का काल भी 1075 ई0 के आस पास होना चाहिए।

12वीं शताब्दी में भी चिकित्सा विज्ञान से समबन्धित अनेक ग्रंथो और टीकाओं का प्रणयन हुआ। इसी काल में भाष्कर ने चिकित्सा विज्ञान पर सुश्रुत पंजिका की रचना की। भाष्कर सोढ़ल के पिता और डल्हण के गुरू थे। इन्हीं के शिष्य डल्हण ने सुश्रुत संहिता पर 'निबन्धसंग्रह' जिसमें भारत के अनेक प्रदेशों का नाम दिया गया है। जिससे पता चलता है कि उन्होनें देश भर में भ्रमण कर चिकित्सा विज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया एवं उसका प्रसार किया। स्वयं हिमाद्रि ने डल्हण का उल्लेख किया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि इनका काल 12वीं शताब्दी का अन्तिम भाग था।

12वीं शताब्दी में ही गुजरात के प्रख्यात वैद्य सोढल हुए जिन्होनें 'गुणसंग्रह' नामक चिकित्सा विज्ञान पर आधारित ग्रंथ की रचना की। इन्होनें स्वंय अपने इस ग्रंथ में अपना परिचय दिया है। वे स्वयं को वत्स गोत्र का रायकवाल ब्राह्मण, वैद्य नंदन का पुत्र और संधदयालु का शिष्य बताया है। गुणसंग्रह एक निघण्टु हैं। सोढल वैद्य के साथ साथ ज्योतिष शास्त्री भी थे। चिकित्सा से योग को पृथक करने की शैली का प्रारंभ सोढल ने ही किया जिसे कालान्तर में सारंगधर ने अपनाया।

इस प्रकार पूर्वमध्यकाल में चिकित्सा विज्ञान से समबन्धित कई ग्रंथों का सफलता पूर्वक लेखन कार्य किया गया। इस काल में शल्य क्रिया का भी उल्लेख मिलता है। यहॉ तक कि इस काल में नकली दॉत बनाने की तकनीकी का भी विकास हो चुका था। जिसका प्रमाण कन्नौज के गहड़वाल शासक जयचन्द्र है। चन्दावर के युद्ध में जयचन्द्र का मृत शरीर उसके कृत्रिम दांत से ही पहचाना गया। इससे यह प्रतीत होता है कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में काफी विकास हो चुका था।[8]

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ बलवती हुईं और इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ, जिससे राजनीतिक अव्यवस्था का विकास हुआ। इस अव्यवस्था के वातावरण में शिक्षा, व्यापार–वाणिज्य, तकनीकी का विकास कुछ समय के लिए अवरूद्ध सा हो गया। किन्तु इन सबके बावजूद चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में काफी विकास हुआ।

सन्दर्भः–

1. वैद्य बनवारी लाल, आयुर्वेदातिहास परिचय, जयपुर
2. तहकीक–ए–हिन्द, अलबरूनी, अनुवादक ई0 सी0 सचाऊ।
3. आदि पुराण, जिनसेन द्वारा रचित।
4. तहकीक–ए–हिन्द, अलबरूनी, अनुवादक ई0 सी0 सचाऊ।
5. विद्याधर शुक्ल एंव रविदत्त त्रिपाठीः आयुर्वेद का इतिहास एंव परिचय, वाराणसी
6. वही
7. वैद्य बनवारी लाल, आयुर्वेदातिहास परिचय, जयपुर
8. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय. प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज, दिल्ली।